कहानी

नैनी माँ

दामिनी सिंह ठाकुर

विदेश की चमचमाती यूनिवर्सिटी से पढ़ाई पूरी कर जब अनन्या भारत लौटी, तो एयरपोर्ट पर उसका स्वागत करने उसके माता-पिता खड़े थे. महँगी गाड़ी, बड़े फूलों का गुलदस्ता और चेहरे पर औपचारिक मुस्कानज सब कुछ था, बस वह अपनापन नहीं, जिसकी उसे बरसों से तलाश थी.

घर पहुँचते ही अनन्या की नज़र अनायास ही उस कोने पर चली गई जहाँ कभी एक साधारण-सी चारपाई रहती थी. वहीं बैठकर कमला उसे कहानी सुनाया करती थी, उसके बालों में उँगलियाँ फेरते हुए कहती—

मेरी बिटिया तो बहुत आगे जाएगी.

कमलाज उसकी नैनी माँ.

अनन्या के माता-पिता दोनों ही व्यस्त लोग थे. मीटिंग्स, फाइलें, विदेश यात्राएँ—सब कुछ था उनके जीवन में, सिवाय समय के. बचपन में जब अनन्या रोती थी, तो माँ का नहीं, नैनी माँ का आँचल उसे चुप कराता था. बुखार में माथे पर ठंडा कपड़ा रखने वाली भी वही थी, और स्कूल से लौटने पर कैसा रहा दिन? पूछने वाली भी.

माँ-पापा ने कभी इरादा नहीं किया कि वे बेटी से दूर रहें, पर ज़िंदगी की दौड़ में यह दूरी अपने-आप बनती चली गई. जन्मदिन के केक काटे जाते थे, पर मोमबत्तियाँ बुझाने से पहले गले लगाने वाला कोई नहीं होता था—सिवाय नैनी माँ के.

समय बीतता गया. अनन्या बड़ी हुई. स्कूल, फिर कॉलेज और फिर विदेश. विदा होते समय भी माँ-पापा ने कहा—

हम तुम्हारे भविष्य के लिए यह सब कर रहे हैं. पर अनन्या की आँखें उस चेहरे को ढूँढ रही थीं, जो भीड़ में कहीं दिखाई नहीं दिया—नैनी माँ का.

आज लौटकर जब उसने सबसे पहला सवाल किया, वह माँ-पापा से नहीं था.

नैनी माँ कहाँ हैं?

घर में एक अजीब-सी ख़ामोशी छा गई.

माँ की आँखें भर आईं.

दो साल हो गएज वह हमें छोड़कर चली गई.

अनन्या के हाथ से बैग गिर पड़ा. वर्षों का संचित दर्द, अधूरापन और प्रेम—सब एक साथ बह निकला. वह उस कमरे में भागी जहाँ नैनी माँ रहती थीं. कोने में रखा एक पुराना संदूक, जिसमें उसकी बचपन की ड्रॉइंग्स और एक छोटी-सी डायरी थी.

डायरी के आख़िरी पन्ने पर लिखा था—

मेरी अनन्या लौटे या न लौटे, पर भगवान उसे इतना सुकून देना कि वह कभी खुद को अकेला न समझे.

उस रात अनन्या बहुत रोई. पहली बार उसने महसूस किया कि खून के रिश्ते ज़रूरी हैं, पर वक़्त और स्नेह उनसे भी ज़्यादा ज़रूरी होते हैं. अगली सुबह वह माँ-पापा के पास बैठी. कोई शिकायत नहीं, कोई आरोप नहीं—बस एक सवाल था—

क्या अब आप मेरे साथ थोड़ा-सा समय निकाल पाएँगे?

माँ ने उसे गले लगा लिया.

पिता की आँखों में पश्चाताप था.

नैनी माँ तो चली गई थीं, पर उनके दिए हुए प्यार ने अनन्या को यह सिखा दिया था कि माँ सिर्फ़ जन्म देने वाली नहीं होती, माँ वह भी होती है जो हर दिन दिल से बच्चे को अपनाती है

क्लास by बड़े भाई

कुछ धारणाएं तोड़िए

संदीप द्विवेदी
कवि/प्रेरक वक्ता/स्किल ट्रेनर

छोटे भाई, हर बात जो बड़े प्रभावी ढंग से लिख दी जाए या कह दी जाए तो यह ज़रूरी नहीं कि वही एकमात्र सच हो. हम सबके बीच आज सोशल मीडिया के दौर में कुछ ऐसी धारणाएं फलने फूलने लगी हैं जो हमें अपनेपन से दूर कर रही हैं. ये धारणाएं हमारा और आने वाली पीढ़ियों का दृष्टिकोण बनती जा रही हैं, जो कि अच्छा नहीं है. दुनिया में खराबी हो सकती है लेकिन पूरी दुनिया खराब नहीं हो सकती.

यहाँ पर में दो धारणाएं, जो अपनों के बीच दूरियाँ बढ़ा रही हैं, रख रहा हूँ. मैं इन्हे गलत नहीं कह रहा लेकिन मात्र यही सही है ये बात सरासर ग़लत है.

रिश्तेदार बुरे होते हैं

इस तरह की धारणाएं हमारे रिश्तों में दूरी और दरारें बना रही हैं क्योंकि इन धारणाओं से हमारे विचार और व्यवहार भी उसी तरह हो जाते हैं. यह हम सबको समझना बेहद ज़रूरी है वरना हम किसी के और कहीं के नहीं रहेंगे. अरे, दो चार अनुभव बुरे हो सकते हैं, सब तो ऐसे नहीं हो सकते और अगर सब ऐसे लग रहे हैं तो कहीं न कहीं हमें खुद
को भी देखने की जरूरत है. यह खुद से भी पूछने की ज़रूरत है कि क्या हम किसी के अच्छे रिश्तेदार हैं ?

मामा मामी ,चाचा चाची ,फूफा बुआ ,भाई भाभी, मौसा मौसी, भतीजे , भांजे, अरे भाई इन्हीं सबसे तो अपना घर बनता है, उत्सव बनता है. थोड़ी खटपट, थोड़े मनमुटाव तो चलते रहते हैं. आप तो बस इनमें आनंद खोजिए. ये याद रखिए,सब रिश्तेदार बुरे नहीं होते हैं लेकिन यदि इसी तरह के वाक्यों को आप अपना महावाक्य मानते हैं तो आपको हर रिश्तेदार बुरे ही दिखेंगे. इस धारणा को बदलिए.

वक्त पड़े कोई साथ नहीं देता

ये आपने खूब कहते सुना होगा या आप भी कहते होंगे, मैं भी इस लिस्ट में जोड़ा जा सकता हूँ लेकिन मुझे बहुत समय पहले यह एहसास हो गया कि ये कितनी ग़लत लाइन है. जब सोचने लगा तो पता चला कि कितनी ही मुश्किलें अपने परिचित, अपने दोस्तों की वजह से मुझ तक आयी ही नहीं. आप भी सोचकर देखिए. आपको अनेक किस्से याद आएंगे कि अगर यहाँ आपका दोस्त न होता तो ये कितना बुरा हो सकता था.

मैं मानता हूँ कहीं बुरा अनुभव हो सकता है लेकिन इसका मतलब यह तो नहीं कि आप अच्छे अनुभव भुला दें.

मानिए कि आपने कहा कि मेरे पड़ोसी या रिश्तेदार आपकी तरक्की से जलते हैं या कुछ भी. अब यहीं पर कोई ऐसा है कि जिसके पड़ोसी अच्छे हों, वहाँ आपकी इस बात से उसके अपने पड़ोसी के प्रति उसके भाव बदलेंगे. इससे कहीं न कहीं उसकी प्रतिक्रिया बदलेगी.

छोटे भाई, कोशिश करना कि बुरे अनुभव के पर्चे जेब में रहें और अच्छे अनुभव के पर्चे हाथ में. मुश्किल तो है पर इतना भी नहीं कि किया न जा सके.

हम सबने जितनी बार भी अपने चुनौती भरे समय में पुकारा होगा.. भले कोई एक लेकिन ज़रूर रुका होगा.

इस मानसिकता को दूर करिए और ऐसा कहिए कि लोग वक्त पड़े जिसमे जितनी क्षमता होती है, उतना साथ देते हैं और देते रहेंगे. यकीन मानिए ऐसा नहीं भी होगा तो भी होने लगेगा.

मोटी बात यह है कि दुनिया हर तरह के लोगों से भरी पड़ी है लेकिन हम अगर पानी लेकर खड़े हैं तो अधिक संभावना है प्यासा ही आएगा और फूल लेकर खड़े हैं तो अधिक संभावना है कि कोई खुशबू पसंद ही आएगा.

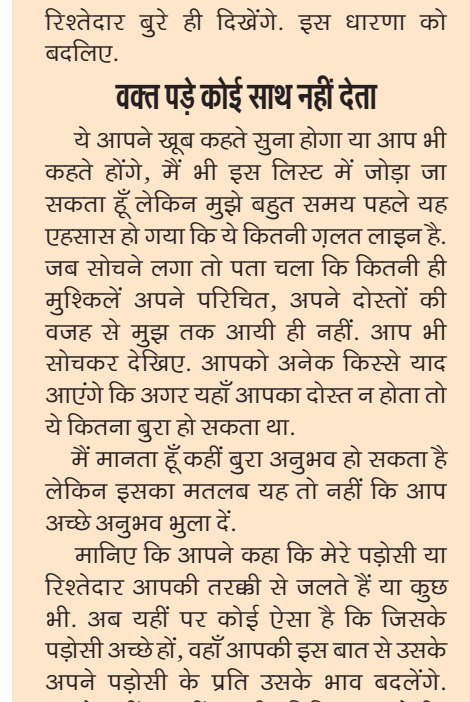

लघुकथाएं

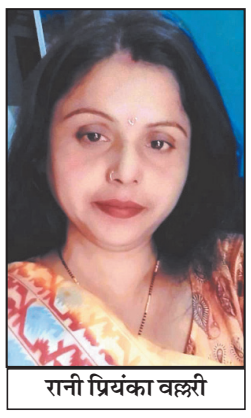

रानी प्रियंका वल्लरी

हम – तुम

मलमली धूप में बैठे जेनीफर अपनी पत्नी डेज़ी को लगातर आवाज़ लगाए जा रहे थे. डेज़ी हांपती हुई सीढ़ियों से उतरी. धड़ाम से सामने पड़ी कुर्सी खींच बैठ गई. उसे कॉफ़ी का मग पकड़ाते हुए जेनीफर ने कहा, कॉफी खत्म कर जरा फोन मिलाओ. निक और केरोलीना से बात करो. उन दोनों को आने को बोलो. इस बार क्रिसमस पर हम साथ में चर्च जायेंगे.क्रिसमस की पार्टी भी धूम धाम से सेलिब्रेट करेंगें. एक बात और केक तुम खुद बनाओगी.

पत्नी डेज़ी ने हामी भरते हुए निक और केरोलिना को फोन लगाई. दोनों बच्चों ने समय ना रहने का बहाना बना कर फोन काट दिया. डेजी को दुबारा बोलने का मौका ही नहीं मिला.

फोन कटने के बाद जेनीफ़र गुस्सा में उबल रहे थे. डेजी अपनी पीड़ा अंदर दबाते हुए शिकायती लहजे में बोली, सुनो जेनीफ़र! तुमने ना जाने कितनी बार मेरी बातों को टाल दिया. कभी छुट्टी नहीं, तो कभी बच्चे छोटे,तो कभी बच्चों की पढ़ाई . हर बार एक नये बहाने बनाते आए हो. अब कोई बहाना नहीं. इस क्रिसमस पर हम गोवा चलेंगे. वहां बेसिलिका ऑफ़ बॉम जीसस में जाकर बारोक वास्तुकला को देखेंगे. यह चर्च इतिहास, कला, वास्तुकला और धार्मिक महत्व का एक अद्भुत संगम है. वहां दूर-दूर से प्रार्थना के लिए लोग आते हैं. और हम दिल्ली में रहकर भी गोवा अबतक जा नहीं पाएं. वहां के बारे में कई बार पढी और सुनी भी हूँ. गोवा का वह बड़ा ही आकर्षित चर्च हैं जो लोग वहां जाकर फ़्रांस जेवीयर के अवशेषों और इतिहास से परिचित होते हैं. हम दोनों को साथ घूमने का मौका भी मिलेगा. वहां जाकर बच्चों के लिए प्रार्थना करेंगे. तुम्हारे पसंद के केक भी खायेंगे.

दोनों बच्चों के पास वक्त नहीं. लेकिन हम दोनों के पास है. हम तुम जाएंगे.

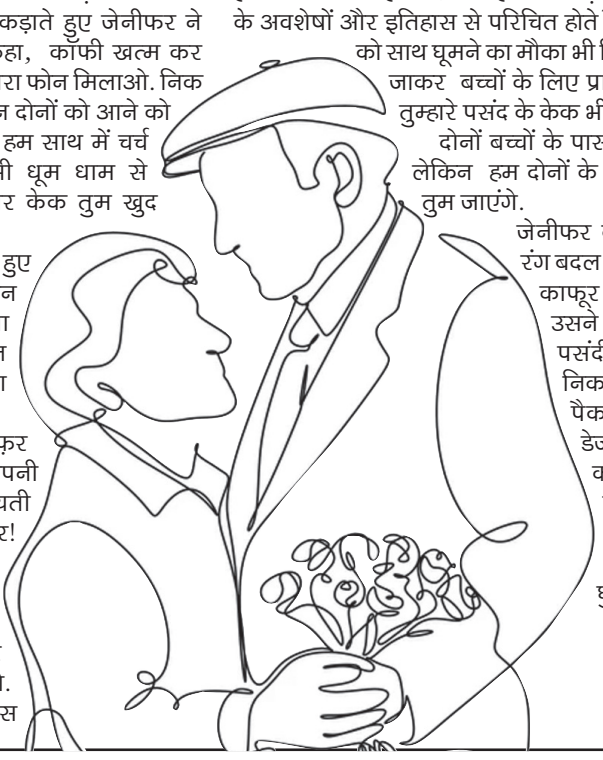

जेनीफर के चेहरे का रंग बदल गया. गुस्सा काफ़ूर हो गया. उसने अपना पसंदीदा ब्लेजर निकाला. उसे पैक करने को डेजी से कह,मोबाइल पर टिकट लेने के लिए उँगलियाँ घुमाने लगा.

स्वेटर

अशोक वाधवाणी

आलोक को भरी जवानी में, सर्द मौसम में अचानक जाड़े ने जकड़ लिया है. ऐलौपैथी, आर्युर्वेदिक आदि सभी उपचार करवाए. लोगों द्वारा बताए गए सारे नुस्खे भी आजमा डाले. परिणाम शून्य निकला. थक-हारकर पत्नी खुशबू के सुझाव पर स्वेटर पहनना शुरू किया . युवा आलोक को स्वेटर पहना देखकर, उसके परिचितों, रिश्तेदारों, शुभचिंतकों को आश्चर्य होने लगा. कुछ लोग हँसते, ताने कसते , मज़ाक उड़ाते, तो कई लोग कारण पूछने से खुद को रोक नहीं पाते. पीठ पीछे खिल्ली उड़ाने वालों की भी कमी नहीं थी. कोई पूछता , शिमला में घूम रहे हो क्या? ˙ करारा कटाक्ष करते हुए कोई कहता, लगता है कश्मीर की बर्फीली वादियों में घूम रहे हो.˙

जितने मुंह, उतनी बातें. ऐसी जली-कटी बातें सुनकर आलोक क्रोधित होकर कहता, मुझे ठंड बर्दाश्त नहीं होती. मेरे स्वेटर पहनने से आपको क्यूं परेशानी होती है?˙ प्रश्नकर्ता बुरा मान जाते और मुंह फुलाकर आगे बढ़ते.

खुशबू ने आलोक को समझाया, लोगों पर गुस्सा करने के बदले, उन्हें ऐसा जवाब दीजिए कि सांप भी मर जाए, और लाठी भी न टूटे!˙

आलोक को सुझाव पसंद आया. अब कोई स्वेटर पहनने पर तंज करता तो आलोक मुस्कराता हुआ जवाब देता, जानलेवा गर्मी ने परेशान कर रखा है. इसीलिए मजबूरन .....˙ आलोक के जवाब पर कोई मुस्कराता, कोई हँसता तो कोई मन में ही बुदबुदाने लगता.

आहिस्ता-आहिस्ता सवाल पूछने वालों की संख्या घटने लगी. लोग जान चुके थे कि अब पंचाईत करना ठीक नहीं. आलोक को अब विश्वास होने लगा कि गर्मी में भी अगर स्वेटर पहना तो कोई तंग नहीं करेगा.

साहित्य से क्या हैं एक पाठक की अपेक्षाएँ

उर्मिला शिरीष

पाठक साहित्य में कुछ ऐसे आदर्श और मूल्य देखना चाहता है जो वृहत्तर मनुष्य, समाज के निर्माण में मार्गदर्शन देने, मानवीय संबंधों को अभिव्यक्त करने वाला साहित्य सर्वाधिक पढ़ा और सराहा गया है. खासकर प्रेम और करूणा की भावाभिव्यक्ति करने वाली रचनाएँ. मानवीय संबंधों को रचने वाला साहित्य पाठक-मन को बांध लेता है. जैसे महाभारत, रामायण, राम चरित मानस आदि. इस सच्चाई को नकारा नहीं जा सकता है कि ये मानवीय संबंध समाज को प्रभावित करते हैं. हममें से ज्यादातर लोगों को बूढ़ी काकी, बड़े घर की बेटी, कफन, ताई, उसने कहा था जैसी कहानियाँ आज भी याद होगी. विश्व साहित्य में भी अनेकों ऐसी कृतियाँ हैं जो मनुष्य की स्मृति से कभी धूमिल नहीं हुई. तो क्या पाठक नये को स्वीकार नहीं कर पा रहा है? उसके स्वप्न में, स्मृति में, चेतना में वही चीजें ठहरी हुई हैं और ठीक वैसे ही लेखन की अपेक्षा वह आज के लेखकों से कर रहा है? क्या पाठकों को भी दो कदम आगे बढ़कर साहित्य को देखने, समझने, पढ़ने की जरूरत है? आज का युवा लेखक भी अपने आसपास के परिवेश को देखता, अभिव्यक्त करता है. नये विषयों को साहित्य के माध्यम से जानने का औसुक्य पाठको में भी होना चाहिए. भावुकता, संवेदना, आदर्श, कल्पना, साहित्य की धुरी है. पर यथार्थ भी तो आवश्यक है. समाज के अनकहे, अनुछुए-अनदेखे पक्षों को साहित्य सामने लाता है जो पाठक को एक वृहत्तर मानव समाज से जोड़ता है. पाठक और साहित्य का संबंध दूध और शक्कर की तरह है. पाठक अपनी राय रखने के लिए स्वतंत्र है. उनकी राय का सम्मान होना चाहिए. हाँ आज पाठकों से भी यह अपेक्षा की जा सकती है कि वे केवल और केवल साहित्य को चुनें. दक्षिण पंथी, वामपंथी, ये संघ, वो संघ, ये विचारधारा, वो विचारधारा इन सबसे परे जो साहित्य आपके मन, हृदय, आत्मा को छूकर गुजर जाये, जो कुछ सोचने को छोड़ जाए, जो आपके भीतर संवेदना और करूणा भर दे वही पढ़िए. बार-बार पढ़िए!

मेरे पास एक पाठक का संदेश आया कि आजकल के लेखक विषय विशेष पर ही क्यों लिख रहे हैं, क्या पूरे समाज के सरोकारों के बारे में लिखना उनकी जिम्मेदारी नहीं है?

पहली नज़र में तो यह बात सामान्य सी लगती है और पाठकों का अपने लेखकों से सवाल करना स्वाभाविक भी है कि लेखक अंतत: अपने पाठकों के लिए ही तो लिखता है पर मुझे लगा मेरे पाठक ने एक गंभीर सवाल उठाया है शायद वह अपने भीतर एक खालीपन महसूस कर रहा है, वह टुकड़ों-टुकड़ों में साहित्य को पढ़ रहा है शायद इसीलिए उसके मन में ये बैचेनी उठी है, जिज्ञासा जागी है. मैं एक और बात सोचने पर मजबूर हो गयी कि हमारा समाज साहित्य से क्या-क्या अपेक्षाएँ रखता है? क्यों रखता है? मुझे लगता है जब कोई व्यक्ति अपने देश तथा समाज की तमाम व्यवस्थाओं से निराश होकर उनके साथ अपने सवालों की मुठभेड़ करता रहता है तो अपने सवालों को अनुत्तरित पाता है, तब वह हार-थककर साहित्य के पास आता है और उसी से अपेक्षा करता है कि उसकी समस्याओं को, सरोकारों को, उसके सपनों-लक्ष्यों को, उसकी दबी आवाज को कोई न कोई लेखक अपने किरदारों के माध्यम से जवाब जरूर देगा. उसका यह विश्वास आज भी साहित्य के प्रति बना हुआ है. कोई भी समाज जब साहित्य में अपने जीवन का प्रतिबिम्ब देखना चाहता है तो वह अपने मन को, आत्मा को, हृदय को, अपने अस्तित्व को साहित्य में खोजता है और यही वो प्रस्थान बिन्दु है जो लेखक को निरंतर लिखने की प्रेरणा देता है. अपने लिखने की जमीन तैयार करता हुआ बाह्य और आंतरिक जगत के संघर्ष से जूझता है, अपनी चेतना को बहुमुखी आयामों में उतारता है. इतिहास गवाह है कि उसकी अपेक्षाओं पर खरा उतरने वाला साहित्य ही लंबे समय तक, देश काल की सीमाओं को तोड़ता हुआ मनुष्य मात्र की प्रतिछाया बनकर हमारे मन में, हमारी चेतना में, हमारे विचारों में जीवित रहता है.

आज अतीत को, सभ्यता-संस्कृति के उत्थान-पतन की कहानियों को जानने-समझने का एकमात्र माध्यम साहित्य ही है. अगर युगों की तस्वीर साहित्य में हैं तो क्या आज का साहित्य हमारे समाज का. हमारे युग का प्रतिबिम्ब नहीं है? क्या विमर्शों के खांचों में बंटा साहित्य अपनी व्यापकता, विविधता, संपूर्णत: तथा प्रभाव खो चुका है! महान् साहित्य की परंपरा से अलग कुछ खास विषयों, क्षेत्रों, समुदायों, जातियों, वर्गों में बंट चुका है. मेरे पाठक को एक ऐसे साहित्य संसार की जरूरत है जहाँ प्रवेश करके वह मानवता, करूणा, प्रेम, संवेदना का एहसास कर सके. जहाँ वह विचार धाराओं के दवावों के कारण श्रेष्ठ साहित्य से वंचित न रह सके. मैं पंडित बालकृष्ण भट्ट की इस बात से सहमत हूँ कि 'साहित्य जनसमूह के हृदय का विकास है. साहित्य कोई पिंजरा नहीं बनाता बल्कि पिंजरे में कैद सभी तरह के बंधनों को तोड़कर एक विराटत्व की तरफ गर्दन उठाकर, आँखें खोलकर देखने की शक्ति देता है. आम पाठक कहानियों, कविताओं, उपन्यासों या अन्य विधाओं में सच्चाई देखना चाहता है. वह चाहता है कि उसके अतृप्त मन को, उसकी दिमाग की भूख को, उसके हृदय में उठती भावनाओ को साहित्य में उतारा जाये. वह रोना चाहता है, वह आंसुओं में भीगना चाहता है, वह अपने एकांत के लिए कोई एक साथी (पात्र) चाहता है जिससे वह संवाद कर सके.

क्या आज के लेखक जो वैश्विक चुनौतियों पर लिख रहे हैं, जो प्रकृति, पर्यावरण और बढ़ते तापमान पर लिख रहे हैं, व्यक्तिगत जीवन पर भी लिख रहे हैं पर उनके अपने आसपास खड़े पेड़-पौधे सूख रहे हैं जिन्हें वह अनदेखा कर रहा है. उसकी पहचान अलग-अलग विमर्शों पर लिखने वाले 'लेखक की छवि' में कैद हो गयी है. कोई दलित साहित्य का लेखक बन गया है तो कोई आदिवासी क्षेत्र का तो कोई स्त्री विमर्श का तो कोई किसानों का तो कोई मनोविज्ञान का. लंबी फेहस्ति है इस तरह के विमर्शों और विषयों की. वह अपेक्षा करता है कि कम से कम लेखक तो इन सारी संकीर्णताओं से बाहर निकले, वह सारी दुनिया को एक माने, वह सबके दर्द को, समस्याओं को, अनुभवो तथा संघर्षों को समान दृष्टि से देखे, समझे उसमें डूबे और फिर अपनी कलम चलाये. ये सच है कि लेखक की अपनी पसंद-नापसंद, दृष्टि-विचार तथा सीमा होती है जिसके ईर्द-गिर्द वो अपनी रचनाएं लिखता है. चूँकि वह लेखक है, समदर्शी है तो उसे अपनी व्यक्तिगत भावनाओं को परे रखकर समाज को प्रमुखता देनी होगी. पाठक की अपने लेखक से अपेक्षा रहती है कि वह दूसरों का दु:ख, दूसरों का संघर्ष, दूसरों का जीवन अपनी रचनाओं में अभिव्यक्त करें. हर काल में लिखा गया साहित्य इन्हीं संपूर्णताओं की तरफ जाने की प्रेरणा पैदा करता आया है. आज हमने महान् लेखकों की महान् रचनाओं को अपनी एक आँख बंद करके पढ़ना-सुनना शुरू कर दिया है. हम समग्रता की डोर में गांठें बांध रहे हैं इसलिए आज का पाठक भ्रमित हो जाता है कि वह तो कुछ विशेष पढ़ना-सुनना चाहता था पर साहित्य में भी वही क्षुद्रताएँ, संकीर्णताएँ, भेदभाव की राजनीति भर गयी है जिसे वह हर रोज अपने आसपास के परिवेश में देखता और जीता है. साहित्य की उस अनकही मनोभूमि की तलाश में घूमता पाठक यदि कुछ अपेक्षाएँ कर रहा है तो मानकर चलना चाहिए कि वह आज भी लेखक के लिखे को न सिर्फ तवज्जो दे रहा है बल्कि लेखक की उपस्थिति को, लेखक के अस्तित्व को सर्वोपरि मानकर चल रहा है. मैंने बचपन में साहित्य पढ़ने की शुरूआत पंचतंत्र, जातक कथाओं से करके हिन्दी, संस्कृत तथा विदेशी लेखकों के अनुदित साहित्य में से उन्हीं को सम्मान दिया है जिन्होंने अपने समय को, मानवीय संबंधों को, मानवीय मूल्यों को लेकर साहित्य का सृजन किया था. विश्व में आज वही साहित्य शेष बचा है जो सबके हित की बात करता है और केवल मनुष्य मात्र की कहानी को कहता है. लेखक की यही वैश्विक दृष्टि उसे संवेदनशील और महान् बनाती है, जिसे पाठकों ने हर युग में, हर देश में, हर भाषा में सराहा और आत्मसात किया है.

पाठकों की अपेक्षाओं पर खरा उतरने वाला साहित्य कैसा हो? अकसर साहित्यिक कार्यक्रमों में कुछ लोगों को सुना है कि वे साहित्यकार से क्या-क्या चाहते हैं? उनका हर वाक्य 'चाहिए' पर खत्म होता है, तब मुझे सुनकर झुंझलाहट होती थी कि इतनी सीख दे रहे हैं तो क्यों नहीं खुद लिख लेते हैं! फिर लगा वे एक पाठक भी तो हैं और पाठक अपनी हैसियत से बोलता, सीख देता, खारिज करता, सिर पर बैठाता नज़र आता है.

संपादकीय बोर्ड | प्रबंध संपादक : सुमीत माहेश्वरी, समूह संपादक : क्रांति चतुर्वेदी